website: www.pawanprawah.com
लखनऊ से प्रकाशित राष्ट्रीय हिन्दी साप्ताहिक
पवन प्रवाह
सत्य का प्रवाह सतत् प्रवाह
डाक पंजीयन संख्या GPO LW/NP-106/2018-2020
पवन प्रवाह
www.pawanprawah.com
e-mail-pawanprawah@gmail.com

लेखक डॉ. भरत राज सिंह
स्कूल ऑफ मैनेजमेंट साइंसेज के महानिदेशक
एवं वैदिक विज्ञान केन्द्र के अध्यक्ष हैं

चिंता, भय व तनाव से मुक्ति. प्रार्थना, श्रद्धा और मुस्कुराहट

हमने पिछले 30 (तीस) अंको में, चिंता, भय व तनाव की समस्या के निदान हेतु अभी तक यह जानकारी मिली है कि नियमित खान-पान नियंत्रण व योग साधना से नकारात्मकता दूर होती है। योगिग क्रियायें चिंतामुक्ति के लिये वैकल्पिक रूप में उपयोगी हो सकती है। इस अंक मे हम श्रद्धाभाव से कैसे जीवन मे खुशी ला सकते हैं, की जानकारी दी गई है।

भाग-31

गतांक से आगे

5.3 श्रद्धा का महत्व

सामान्यतः श्रेष्ठता के प्रति अटूट आस्था को श्रद्धा कहा जाता है। आस्था जब सिद्धांत से व्यवहार में आती है तब उसे निष्ठा कहा जाता है। जब निष्ठा व्यक्ति के जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भक्ति के क्षेत्र में प्रवेश करती है तब श्रद्धा का रूप ले लेती हैं। वस्तुतः श्रद्धा एक गुण है जो व्यक्ति के सद्गुणों सद्विचारों और उत्कृष्ट विशिष्टताओं के आधार पर उसे श्रेष्ठता प्रदान करता है। ऐसे सद्गुणी सदाचारी और श्रेष्ठजन ही व्यक्ति को उन्नति के शिखर पर पहुंचाने की सीढ़ी के रूप में सहायक सिद्ध होते हैं और उसके जीवन-पथ को आलोकित करते हैं। कर्म ज्ञान और उपासना या भक्ति का मूल श्रद्धा ही है। इसी प्रकार भक्ति रसामृत सिंधु नामक ग्रंथ में लिखा गया है कि श्रद्धा से सत्संग पारस्परिक सद्भाव स्नेह-आदर और सहयोग के संवर्द्धन के साथ ही समाज में बिखराव पर नियंत्रण और एकत्व की भावना में वृद्धि होती है। समग्र सृष्टि भगवान की ही अभिव्यक्ति है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में एक स्थान पर स्पष्ट घोषणा करते हुए कहा है कि श्रद्धावान व्यक्ति ही मुझे प्राप्त कर सकता है। साराहीन संसार का कोई भी व्यक्ति भगवान को बिना श्रद्धा के प्राप्त कर सकता है। यह श्रद्धा ही है जो समाज को गति दिशा और सद्भाव उत्पन्न करने के साथ मनुष्यता को विकसित करती है।

श्रद्धा मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को गहराई से प्रभावित करती है। गीता में कहा गया है कि श्रद्धा अध्यात्म क्षेत्र में सात्विकी और कर्म के क्षेत्र में राजसी गुणों को उत्पन्न करती है। संत तुलसीदास ने भी मानस में एक स्थान पर कहा है कि श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। भक्ति के क्षेत्र में श्रद्धा की ही प्रधानता होती है। श्रद्धा और विश्वास के साथ अर्जित ऊर्जा विलक्षण प्रभाव प्रकट करती है। भौतिकता और पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण हम अपने गौरवशाली अतीत को भूलते जा रहे हैं। वस्तुतः श्रद्धा व्यक्ति के जीवन का उत्कृष्ट आभूषण है। तभी कहा गया है कि श्रद्धावान व्यक्ति ही ज्ञान को प्राप्त कर पाते हैं। यहां स्मरण रखना चाहिए कि श्रद्धा का अर्थ अंधविश्वास नहीं है। जब अंधविश्वास दूर हो जाता है तब श्रद्धा का अभ्युदय होता है।

सद्विचारों पर बुद्धि केंद्रित रखने का ही नाम श्रद्धा है। यही श्रद्धा मनुष्य को बल देती है सब प्रकार से प्रेरणा देती है और जीवन को सार्थक बनाती है। महाकवि तुलसीदास ने मानस में भवानी शंकरी वन्दे, श्रद्धा-विश्वास रुपिणी कहकर विश्वास को शिव की और श्रद्धा को पार्वती की उपमा दी है, जो सदैव साथ-साथ रहते हैं। इनकी सहायता के बिना अपने अंतस में विद्यमान परमात्मा के दर्शन नहीं हो सकते। विश्वास में निश्चय का भाव है। विश्वास होने पर मन भटकता नहीं। एक निर्धारित मार्ग पर चलने का निर्णय ले लेता है। सांसारिक प्रयोजनों में सफलता के सोपानों तक जाने के लिए ज्ञान और कर्म का समन्वय ही पर्याप्त है, पर अध्यात्म इससे एक सीढ़ी की ऊंचाई पर है। उसके लिए एक विशेष अवलंबन श्रद्धा का भी होना चाहिए। इस संदर्भ में गीता का कथन है कि मनुष्य श्रद्धा पर अवलंबित है। जिसकी जैसी श्रद्धा है, वह वैसा ही बन जाता है, जिसने स्वयं को दुष्ट, अनाचारी व मूर्ख आदि मान रखा है, उसके वही गुण और वही लक्षण उभर-उभरकर प्रत्यक्ष आते रहेंगे। इसी प्रकार जो अपने संबंध में संत, सज्जन और श्रेष्ठ होने की मान्यता बना लेता है, उसकी वही विशेषता उभरती हुई क्रियान्वित होती दृष्टिगोचर होती है। श्रद्धा के अभाव में गंगा एक नदी, हिमालय बर्फ और पत्थरों का समुच्चय और मूर्ति मात्र खिलौना और गुरु सामान्य स्तर का मानव मात्र है। तब भगवान भी प्रकृति व्यवस्था का एक अदृश्य नियम भर मालूम देता है।श्रद्धा वास्तव में प्राण है और स्वरूप उसका कलेवर।

श्रद्धा न हो तो विभिन्न प्राणियो में कोई अंतर नहीं रह जाता उदाहरणार्थ- गाय व भैंस। गाय हमारे लिये एक श्रद्धापूर्ण मा समान है जबकि गाय व भैंस दोनो से दूध प्राप्त होता है । श्रद्धामंत्र भी अक्षरों का समुच्चय प्रतीत होते हैं। एक संत गंगा तट पर रहते थे। नाव न होने पर पार जाने वालों के कान में राम मंत्र बता देते और कह देते, इसे जपते हुए गंगा पार कर जाना। कुछ दूर पर एक फकीर रहते थे, वे भी ऐसा ही चमत्कार दिखाते। उतरने वालों को खुदा का नाम लेने को कह देते, वे भी सब पार हो जाते। एक चतुर व्यक्ति ने दोनों का भेद जाना और दोनों का सम्मिश्रण कर और भी अधिक आसानी से पार निकलने का हिसाब लगाया। वह राम-खुदा कहता हुआ पार जाने का प्रयत्न करने लगा और बीच गंगा में डूब गया। शक्ति शब्दों में नहीं, उनके साथ जुड़ी भावना शक्ति में श्रद्धा के सम्पुट में होती है।

5.3.1 श्रद्धा मानव जीवन की नींव है- जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही उसका व्यक्तित्व बनता है। गीताकार के शब्दों में श्रद्धामयोऽयं पुरुषः यह मनुष्य स्वभाव से ही श्रद्धावान है। यह बात अलग है कि उसकी श्रद्धा का आधार क्या हो। जिस तरह सूर्य के बिना दिन नहीं होता, आँखों के बिना देखा नहीं जा सकता, कानों कि बिना सुना नहीं जा सकता, उसी तरह श्रद्धा के बिना जीवन गतिमय नहीं हो सकता। जिस तरह दीपक के प्रज्ज्वलित रहने के लिए स्नेह आवश्यक है उसी तरह जीवन के लिए श्रद्धा अपेक्षित है। वह मनुष्य, मनुष्य नहीं जिसमें श्रद्धा न हो।

5.3.2 श्रद्धा ही सत्य का साक्षात्कार कराती है- श्रद्धया सत्यामाप्यते (यजु 19:30) श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है। श्रद्धा प्राणः (अथर्व 9.5.21) श्रद्धा मनुष्य का प्राण है। श्रद्धाहीन मनुष्य निष्प्राण, निर्जीव ही समझना चाहिए। क्योंकि किसी तरह की श्रद्धा न होने से वह निश्चेष्ट ही रहेगा और

चेष्टारहित जीवन मृत्युतुल्य ही होता है।

श्रद्धा मुक्ति का, ज्ञान प्राप्ति का, जीवन साधना का आधार है। गीताकार ने कहा है-

श्रद्धावान् लभते ज्ञान तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा पराँशान्तिमचिरेणाधि गच्छति।।

श्रद्धालु व्यक्ति अपनी इन्द्रियों का संयम करके तत्परता से ज्ञान प्राप्त करता है। ज्ञान प्राप्त होने पर मुक्ति मिलती है और फिर वह परम शाँति, सुख की अनुभूति करता है।

हमारी श्रद्धा का उदय होता है किसी महत्वपूर्ण व्यक्तित्व से। जब हम किसी व्यक्ति में जनसाधारण से विशेष गुण या शक्ति का दर्शन करते हैं तो उसके प्रति एक आनन्दयुक्त आकर्षण पैदा होता है हममें यह आकर्षण उसके महत्व को स्वीकार करने के साथ-साथ हममें उसके प्रति पूज्य भाव भी पैदा करता है। इस प्रक्रिया का नाम श्रद्धा है।

5.3.3 श्रद्धा का आधार व्यक्ति के गुण कर्म ही होते हैं- इसलिए जिन कर्मों की प्रेरणा से श्रद्धा उत्पन्न होती है उन्हें धर्म की संज्ञा दी जाती है और इसी धर्म से मनुष्य समाज की स्थिति होती है। संक्षेप में धर्मवान व्यक्ति हमारी श्रद्धा का केन्द्र होता है। श्रद्धालु और श्रद्धेय के बीच में यह धर्म (कर्म) ही मुख्य हेतु होता है।

मनुष्य की प्रतिभा, शक्ति साधन सम्पन्नता भी श्रद्धा का आधार हो सकती है किन्तु ये कोई सार्वभौमिक नियम नहीं है। इनके संबंध में यह कोई निश्चय नहीं कि इनसे समाज का भला ही होगा। प्रतिभावान व्यक्ति भी समाज का शोषण कर सकता है, उसे हानि पहुँचा सकता है। शक्तिशाली होकर भी मनुष्य गुण्डा, दुष्ट दुराचारी हो सकता है। साधन-सम्पन्न व्यक्ति भी बुराई और समाज को हानि पहुँचाने वाले कार्य कर सकता है। इसलिए जिन कृत्यों से सामाजिक हित में बाधा पड़े वे मनुष्य को श्रद्धा के पूर्ण आधार नहीं हो सकते। यों समाज में थोड़े बहुत व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो आततायिओं की प्रशंसा करते हैं। व्यसनी दुराचारी होकर भी कोई प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति कुछ व्यक्तियों की श्रद्धा का केन्द्र हो सकता है। साधन सम्पन्न व्यक्ति असामाजिक कर्म करके भी बहुतों का श्रद्धा भाजन बन सकता है। किन्तु ये सभी समाज के लिए अहितकर होने से हमारी श्रद्धा के सही आधार नहीं हो सकते। उल्टे ऐसे लोगों के प्रति श्रद्धालु होकर उन्हें प्रोत्साहन देना उनके द्वारा की गई पाप प्रवृत्तियों का भागी बनना है अर्थात् पाप का भागी बनना है।

अस्तु सद्कर्म, सदाचार, शील, सज्जनता ही हमारी श्रद्धा का उपयुक्त आधार हो सकते हैं क्योंकि इसका मनुष्य मात्र के भले से संबंध होता है। समाज की स्थिति को बल मिलता है इनसे। इनके अभाव में तो प्रतिभाशाली साधन सम्पन्नता भी हानिकारक हो सकती है।

सज्जनता, शील और इससे प्रेरित सत्कर्म जिन्हें दूसरे शब्दों में धर्म भी कहा जा सकता है संसार के सभी जन-समुदायों में प्रतिष्ठित है और इनसे समाज के नियम, व्यवस्था, स्थिति में सहयोग मिलता है। इसलिए ये ही हमारी श्रद्धा के सच्चे आधार हो सकते हैं।

श्रद्धा जहाँ मनुष्य के निजी जीवन का आधार बनती है, प्रेरणा का काम करती है, जीवन के रहस्यों को स्पष्ट कर मुक्ति प्रदान करती है वहाँ वह एक महत्वपूर्ण सामाजिक कर्त्तव्य भी है। सदाचारी, शीलवान, धार्मिक व्यक्ति के प्रति यदि हम श्रद्धा नहीं रखते तो कर्त्तव्य का पालन नहीं करते। किसी को भले काम करते देखकर, त्याग-साहसपूर्ण कदम रखने पर, धर्म का आचरण करने पर यदि हमारे मन से धन्यवाद, कृतज्ञता के भाव प्रकट न हो तो हम समाज के लिए जड़, पत्थर की तरह हैं। हम उसके लिए किसी काम के नहीं। अस्तु श्रद्धा एक सामाजिक उत्तरदायित्व है। इससे धर्म को बल मिलता है, सज्जनता को जीवन। जिस तरह वृक्ष को हरा-भरा रखने के लिए उसे सींचते रहने की आवश्यकता है उसी तरह समाज को शुभ कर्मों से युक्त रखने, धर्ममय रखने के लिए, उसे श्रद्धा से सींचते रहने की आवश्यकता है।

5.3.4 श्रद्धा वस्तुतः एक सामाजिक भावना है- वह एक ऐसी आनन्दपूर्ण कृतज्ञता है जो एक प्रतिनिधि के रूप में हमें समाज के सम्मुख प्रकट करते हैं। लेने देने की कोई बात नहीं होती श्रद्धा में। यह एक सामाजिक उत्तरदायित्व है। जन-सामान्य का धर्म है। कोई भी व्यक्ति श्रद्धा का पात्र हो सकता है यदि वह सामाजिक जीवन के लिए उपयोगी होता है।

श्रद्धा के द्वारा हम अपना ही भला नहीं करते वरन् समाज का भी बहुत बड़ा साधन करते हैं। एक सदाचारी, धर्मवान व्यक्ति स्वभाव से अपने आस-पास प्रसन्नता और आनन्द की उपस्थिति देखना चाहता है और हम अपनी श्रद्धा प्रकट करके अपना आनन्द और प्रसन्नता व्यक्त करते हैं। इससे श्रद्धेय का उत्साह बढ़ता है। उसे अपनी सामर्थ्य का ज्ञान होता है। इससे समाज में शील, सदाचार, धर्म को प्रोत्साहन मिलता है जो समाज की सुरक्षा स्थिति के लिए आवश्यक होते हैं।

5.3.5 श्रद्धा कहने की, या प्रचार करने की वस्तु नहीं है- अपने मन में किसी के प्रति श्रद्धा रखकर बहुत दूर रहते हुए भी उसके महत्व को समाज में प्रतिष्ठा देने में सहायक हो सकते हैं हम। श्रद्धा का आधार गुण और कर्म होते हैं। मनुष्य तो गौण होता है। उस गुण और धर्म को हम कहीं भी श्रद्धापूर्वक बल दे सकते हैं स्वयं आचरण करके और दूसरों में उनका प्रसार करके। इस संदर्भ में यह कहने कोई आवश्यकता नहीं कि मैं आपके प्रति श्रद्धा रखता हूँ।

जिसका सब कुछ छूट गया है, जो जीवन से निराशा हो चुके हैं और सान्त्वना, अवलम्बन और जीवन देती है-श्रद्धा। प्रत्येक समर्थ व्यक्ति भी अपने आप में अपूर्ण होता है उसे किसी अवलम्बन की आवश्यकता होती है और श्रद्धा ही मनुष्य का शुद्ध अवलम्बन होती है। इसमें ऐसा परकीय-विश्वास होता है जिससे स्वकीन कार्य भी सुगम हो जाता है। श्रद्धालु का जीवन सरल हो जाता है। उसके जीवन के ताप शीलत हो जाते हैं। कठिनाइयाँ निष्प्रभ हो जाती हैं श्रद्धा के अवलम्बन से। जिन लोगों का जीवन श्रद्धा रहित होता है उनके जीवन में सुगम पथ बन्द हो जाते हैं उन्हें कठिनाइयों का कष्टकाकीर्ण पथ का अवलम्बन लेना पड़ता है या बहुत दिनों में थोड़ी-सी दूरी ही तय कर पाते हैं वे। लेकिन जो श्रद्धा अर्जित कर लेते हैं उनके लिए कठिन और असंभव कुछ भी नहीं रहता।

5.3.6 श्रद्धा का मूलाधार है दूसरे के महत्व को स्वीकार करना। किसी भी क्षेत्र में व्यक्ति की विशेषताओं से प्रभावित होकर हम उसे महत्व देते हैं ऐसी दशा में अपना आपा भूलना पड़ता है। लेकिन जिन लोगों में स्वार्थ और संकीर्णतायें भरी रहती हैं, जिन्हें अपनी बड़ाई ही अच्छी लगती है, जिन्हें अपने सिवा किसी का महत्व नहीं सुहाता ऐसे स्वार्थी और अभिमानी लोगों में श्रद्धा की भावना पैदा नहीं होती। अपनी संकीर्णताओं के कारण ये लोग दूसरों के कार्य और जीवन का यथार्थ मूल्यांकन भी नहीं कर पाते।

5.3.7 श्रद्धा न्याय-बुद्धि पर चलती है- श्रद्धेय के जितने महान गुण कर्म-धर्म होंगे उतने ही अनुपात से दूसरे लोगों में श्रद्धा का उदय होता है। सद्गुण, सत्कर्म, शील, धर्मपालन का सच्चा मूल्यांकन है- श्रद्धा। श्रद्धा कोई व्यापार नहीं है जिसमें श्रद्धावान कुछ प्राप्ति की आशा रखे श्रद्धेय से। यह तो दो व्यक्तियों के बीच का पुनीत माध्यम है। किसी चाह की प्राप्ति की भावना रख यदि हम किसी के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हैं तो वह श्रद्धा नहीं चापलूसी, खुशामद है। श्रद्धा के नाम पर स्वयं को और श्रद्धेय को धोखा देना है। इसमें कोई संदेह नहीं कि आजकल ऐसे झूठे श्रद्धालु और श्रद्धापात्रों का अधिक बोलबाला है।

शास्त्रकारों ने एक मत होकर कहा है- श्रद्धापूर्वक किए हुए कर्म दिये गये दान आदि ही सफल होते हैं। अश्रद्धापूर्वक किया हुआ कोई भी कर्म निष्फल हो जाता है गीताकार ने कहा है-

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥

श्रद्धा के बिना किये हुए यज्ञ यागादि, दिये हुए दान की हुई तपश्चर्या यहाँ तक कि कोई भी कर्म, फल नहीं देता। व्यर्थ चला जाता है। हे अर्जुन उससे इस लोक में कोई सिद्धि नहीं मिलती तो भला परलोक में क्या मिलेगी।

ऋग्वेद मे वर्णन है-

श्रद्धायाग्नि समिध्यसे, श्रद्धा हूयते हविः।
श्रद्धा भगस्य मूर्धिनि वचसा वेदयामसि॥

5.3.8 श्रद्धा से आत्माग्नि प्रदीम होती है- उसमें श्रद्धापूर्वक ही आहुति दी जाती है। श्रद्धा समस्त कल्याणकारी कार्यों के शीर्ष-स्थान पर विराजमान है श्रद्धा के बिना कुछ भी तो प्राप्त नहीं होता।

उपनिषद्कार ने भी यही कहा है-

श्रद्धयादयम् (श्रद्धापूर्वक देना चाहिए)

श्रद्धालु के प्रति श्रद्धापूर्वक जो कुछ दिया जाता है उसे दान कहते हैं। वैसे दान की प्रेरणा दो होती हैं- एक श्रद्धा, दूसरी दया। सामर्थ्यहीन, गरीब, असहाय व्यक्तियों को दान देने की प्रेरणा दया से उत्पन्न होती है किन्तु श्रद्धा की प्रेरणा से सामर्थ्यवान व्यक्ति को देने की भावना पैदा होती है। विद्यादान में रत, समाज सेवा और परोपकार में लीन, मानव समुदाय की ज्ञान वृद्धि में लीन पुरुषों के अभाव की पूर्ति तत्परता से करना ही सच्ची बात है। वह समाज के ठीक पेट में जाता है और समाज के सभी अंगों को परिपुष्ट करता है। लेकिन स्वार्थियों, पाखण्डियों, अन्यायियों को जो दिया जाता है वह समाज के उसी तरह अंग नहीं लगता जिस तरह छिद्रयुक्त घड़े में पानी संग्रहीत नहीं रहता।

स्वार्थी व्यक्ति श्रद्धा को अपने लाभ की पूर्ति या अपनी तुच्छ मनोवृत्ति की तृप्ति के लिए उपयोग करते देखे जाते हैं। कोई साधुओं के वस्त्र पहनता है और कोई जन-सेवा का नारा लगाते हैं तो कोई बड़े भारी त्यागी बनकर समाज को धोखा देते हैं। ऐसे लोग ऊंची-ऊंची बातें कहते हैं जैसे कोई महान विद्वान हो या ज्ञानी ध्यानी। तरह-तरह के बनाव प्रचार, प्रोपेगण्डा के द्वारा भोले लोगों को प्रभावित कर उनकी श्रद्धा प्राप्त करते हैं और फिर। उससे शोषण करते हैं, उन समाज का अपने लाभ के लिए।

कई लोग श्रद्धा को अपने मनोविलास का साधन बनाते हैं। ऐसे लोगों के लिए श्रद्धा उसी तरह है जैसे कि नशेबाज के लिए शराब, भांग, गाँजा, चण्डू आदि। ऐसे लोग अपने कामों से एक क्षण के लिए भी अपने नाम का वियोग नहीं सह सकते। ये लोग ऐसे काम उठाते हैं जिनमें नाम और काम का आडम्बर अधिक हो लेकिन मूल में कुछ भी न हो। लेकिन श्रद्धा इस तरह के दुरुपयोग और अपव्यय के लिए नहीं है। हमें इस संबंध में पूरी सावधानी बरतनी चाहिए। कोई दूषित मनोवृत्ति का व्यक्ति हमारी श्रद्धा भावना का शोषण कर उसका दुरुपयोग न कर सके। क्योंकि श्रद्धा के द्वारा हमारी समस्त शक्तियों का भी दुरुपयोग किया जा सकता है। श्रद्धा समाज को पुष्ट करने वाली एक अमृतधारा है किन्तु समाज का यह भी कर्त्तव्य है कि दुष्ट, स्वार्थी, लोग इसका दुरुपयोग न करें।

इस सावधानी के साथ हम श्रद्धा की उपासना करें।

श्रद्धाँ प्रार्थहवाभहे श्रद्धाँ मध्यदिन परि।
श्रद्धाँ सूर्यस्य निम्रुचि श्रेद्धे श्रद्धापयह नः॥
(ऋग्० 01 051। 5)

श्रद्धा देवी का आह्वान करो। प्रातः काल श्रद्धायुक्त हों हम। मध्याह्न में श्रद्धावान रहें। सायंकाल श्रद्धा से युक्त हों और रात्रि में भी श्रद्धायुक्त रहें। जीवन के प्रत्येक कार्य में, प्रत्येक क्षण श्रद्धा को धारण किये रहें। ●

क्रमशः अगले अंक 32 को पढ़ें...